ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 106-107
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

भारतीय दर्शनों में कार्यकारण वाद

डॉ. निहारिका चतुर्वेदी
एसोसिएट प्रोफेसर– संस्कृत विभाग, एस0आर0के (पी0जी0) कॉलेज फिरोजाबाद (उ0प्र0) भारत

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय दर्शनों में कार्यकारणवाद की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता का वर्णन किया गया है। वेदान्त के कारण सम्बन्धी सिद्धान्त विवर्त–वाद कहलाता है। किसी भी कार्य में सूक्ष्म रूप में कारण विद्यमान रहता है। कार्यकारण वाद में दार्शनिकों ने प्रमुख रूप से सांख्य एवं न्याय आदि दर्शनों की मान्यता दी है। जिस प्रकार गुण कारण में होते हैं, उसी प्रकार के गुण कार्य में आते है।

भारतीय दर्शनों ने कार्यकारणवाद चार प्रकार का स्वीकार किया है। 'असतः सत् जायते ' असत् से सत् की उत्पत्ति होती है। 'सतः असत जायत ' अर्थात् सत् से असत् उत्पन्न होता है। 'सतः विवर्त जायते ' अर्थात् सत् से विवर्त उत्पन्न होता है, अर्थात् कारण तो सत् है परन्तु कार्य यथार्थ रूप में नहीं है। 'सतः सत् जायते' सत् से सत् की उत्पत्ति होती है। बौद्ध धर्म के कार्यकारणवाद का नाम 'असत् कारणवाद' माना जाता है। बौद्ध दर्शन क्षणिक वाद को मानता है ।

'यत् क्षणिकम् तत् सत जलचर पटलवत्'

बौद्ध दर्शनक्षण 'भंगुरवाद' को स्वीकारता है । कोई भी वस्तु पूर्वक्षण में उत्पन्न हो करके पश्चात् क्षण में नष्ट हो जाती है। बौद्ध दर्शन में माना जाता है कि कार्य और कारण दोनो एक ही क्षण में नहीं रह सकते है अर्थात् बीज के नष्ट होने पर ही अंकुर की उत्पत्ति संभव है। कारण के नष्ट हो जाने के बाद ही कार्य की उत्पत्ति होती है।

वेदान्त का कारणता सम्बन्धी सिद्धान्त विवर्त वाद कहलाता है। संपूर्ण नाम रूपात्मक विश्व विवर्त है। इस विवर्त का कारण अध्यास है। ब्रहम ही एकमात्र सत् है, कारण है। ब्रहम ही अध्यास के कारण जगत के रस में दृष्टिगत होता है। सारा नाम रूपादि जगत् सत्स्वरूप से ही सत्य है, स्वयं तो वह मिथ्या है। विर्क्तवाद के अनुसार विकार केवल विवर्त या आभास मात्र है। जब ज्ञान का उदय होता है, तथा जीव ब्रह्मैक्य की अनुभूति होती है, तब जगत और उसके सभी व्यावहारिक प्रपंच लुप्त हो जाते हैं। जगत् ब्रहम का विवर्त मात्रा है, परिणाम नहीं। यह विवर्त आभास है। हम अज्ञानवश सृष्टि को सत्य मानते हैं। वास्तव में यह मिथ्या है, कल्पना है। विवर्तवाद के अनुसार केवल कारण की ही एकमात्र सत्ता है। कार्य की नहीं मृत्तिका ही एक मात्र सत् है। मृत्तिका के अनेक विकार हो सकते हैं, जैसे घड़ा, कुल्हड़ आदि। परन्तु सभी विकार विवर्त हैं। सर्प रस्सी का विवर्त है, क्योकि उसकी सत्ता रस्सी से भिन्न है। रस्सी की व्यावहारिक सत्ता है और सर्प का स्वरूप आभास मात्र है। इसी प्रकार जगत् ब्रह्म का विवर्त है, ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक है और जगत् की व्यावहारिक।

कार्य–कारण के सम्बन्ध में सांख्य का मत सत्यकार्यवाद कहलाता है। कोई भी कार्य सूक्ष्म रूप में अपने कारण में विद्यमान रहता है। जब उसका आविर्भाव होता है तब उसे घटित या उत्पन्न कहा जाता है। वस्तुतः उसकी नयी सृष्टि नहीं होती, क्योंकि द्रव्य के गुणों या धर्मों में कुछ अन्तर हो जाता है। अतः कार्य भी अपने कारण से सर्वथा भिन्न नहीं होता। यदि तिल के कणों में तेल पहले से होता तो तिल से तेल का अविर्भाव नहीं होता। अतः असत् वस्तु या कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। किसी कार्य विशेष की उत्पत्ति के लिये किसी कारण विशेष की आवश्यकता होती है।

उदाहरणार्थ मृत्तिका से घट, तन्तु से पट, तिल से तेल आदि कार्य उत्पन्न होते हैं। मृत्तिका तन्तु, तिल आदि उपादान कारण हैं। उपादान ही कार्य रूप में (तिल तेल में) परिवर्तित हो जाता है। परन्तु इस परिवर्तन के पूर्व भी कार्य अपने उपादान कारण में सत् है असत् नहीं। यदि कारण और कार्य असम्बद्ध होगें तो कारण से कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं हो सकेगी। कारण और कार्य में अभेद सम्बन्ध है भेद नहीं कार्य कारण का रूपान्तर है। दही दूध का दूसरा रूप है। दोनों में केवल अवस्था–भेद है। कारण पूर्व अवस्था जो अविकसित है तथा कार्य उत्तर विकसित अवस्था है। तन्तु और पट केवल विभिन्न अवस्थायें हैं, वस्तुत दोनों में अभेद है। संख्यानुसार कार्य सत्ता अपनेकारण में भी विद्यमान रहती है अर्थात् कार्य उत्पन्न होने के पहले भी सत् है। संख्या दर्शन परिणामवादी है। इसके अनुसार प्रकृति कारण है और त्रिगुणात्मक संसार कार्य प्रकृति का त्रिगुणात्मक संसार कार्य प्रकृति का त्रिणुत्मक जगत् के रूप में रूपान्तर होता है, यही सत् का परिणाम है।

न्यायवैशेषिक का मत 'असत्कार्यवाद' कहलाता है। वैशेषिक दर्शन में कारण और कार्य सापेक्ष पद माने गये हैं। किन्हीं दो पदार्थों में नियम से पहले रहने वाले को कारण तथा निमय से बाद में रहने वाले को कार्य कहते हैं। तात्पर्ययह है कि कारण नियमतः पूर्ववर्ती घटना है तथा कार्य पश्चाद्वर्ती है। 'कार्यनियतपूर्ववृत्तिकारणम्'। कारण केवल पूर्ववर्ती पदार्थ नहीं वरन् नियत पूर्ववर्ती है। जिस क्षण में कार्य की उत्पत्ति होती है उसके ठीक पूर्व का क्षण अव्यवहित पूर्वक्षण कहा जाता है। नियत का अर्थ है व्यापक। कारण के लिये नियत कार्य का व्यापक होना आवश्यक है। यदि नियत शब्द कारण की परिभाषा

अनुरूपी लेखक

से हटा लिया जाय तो किसी कार्य के पूर्व जो भी पदार्थ होगा वही कारण कहलाने लगेगा। यदि घटोत्पत्ति के पूर्व वहाँ रासभ आदि विद्यमान हैं, अतः वे भी कारण हो जायेंगे। रासभ का वहाँ रहना नियत पूर्व नहीं है। वह तो वहाँ अकस्मात् या दैवात् है। इसी अकस्मात् के निराकरण के लिये नियत पद का सन्निवेश किया गया है। कारण के लक्षण में अन्यथा सिद्ध पद का सन्निवेश भी आवश्यक है। अतः कारण का लक्षण हुआ अन्यथा सिद्ध, नियत पश्चाद् होना कार्य का लक्षण है। किसी कार्य के साथ साक्षात् सम्बन्ध न रखने वाला ही अन्यथा सिद्ध कहा जाता है। कारणत्व जिस रूप से कार्य के प्रति ग्रहण किया जाता है, वह रूप उस कार्य के प्रति अन्यथा सिद्ध है, जैसे घट के प्रति दण्डत्व। कार्य समवाय सम्बन्ध के द्वारा कारण में विद्यमान रहता है तथा कार्योत्पत्ति समवायि कारण में ही संभव है। इस प्रकार कार्य अपने समवायि कारण से सम्बद्ध होकर भिन्न है। अतः न्याय वैशेषिक में कार्य कारण का सम्बन्ध 'अभेदसहिष्णु अत्यन्त भेद' स्वीकार किया गया है। यह मत 'असत्कार्य वाद' कहलाता है। इस प्रकार असत्कार्य का अर्थ कार्योत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य का अभाव है। कार्य का लक्षण ही है – 'कार्य प्रग्भाव प्रतियोगी'। अर्थात् कार्य उसे कहते हैं, जो प्राग भाव का प्रतियोगी है। घटोत्पत्ति के पूर्व कपाल आदि कारण में अविद्यमान रहता है। अतः हमें ज्ञान होता है 'अत्र घटो भविष्यति'। घर के नष्ट होने पर हमें ज्ञान होता है 'घटो नष्टः' इत्यादि। अतः जिसमें उस कार्य का प्रागभाव होता है, उसी में उसकी उत्पत्ति होती है। तिल से तेल की उत्पत्ति होती है, बालू से नहीं। तिल में तेल का प्रागभाव है और बालू में तेल का अत्यन्ता भाव है, अतः उत्पत्ति के पूर्व कार्य का प्रागभाव कारण में है तथा नाश होने के पश्चात् उसका ध्वसाभवि हो जाता है। कारण का व्यापार प्रागभाव दशा में ही संभव है, ध्वंसाभाव काल में नहीं। नैयायिक कारण और कार्य की सत्ता को पृथक मानते हैं, इसीलिये इन्हें 'असत्कार्यवादी' कहा जाता है।

न्याय दर्शनानुसार किसी कार्य की उत्पत्ति में कई कारण स्वीकार किये जाते हैं – साधारण, असाधरण आदि। सभी कार्यों में जिन कारणों की अपेक्षा रहती है, उसे साधारण कारण कहते हैं जैसे ईश्वर, ईश्वरीय ज्ञान, अदृष्ट धर्माधर्म कार्य का प्रागभाव, दिक् काल ये सभी कार्यों में कारण होते हैं। अतः इन्हें साधारण कारण कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जो सभी कार्यों का न होकर किसी विशेष कार्य का कारण होता है, उसे असाधारण कारण कहते हैं, जैसे घट कार्य के प्रति जो चक्र, चीवर, दण्ड, कुलाल आदि कारण हैं उन्हें असाधारण कारण कहते है। इसी प्रकार पट कार्य के प्रति तन्तु, तुरी, वेमा, तन्तु समवाय आदि असाधारण कारण हैं। अत्यन्त साधक किसी कार्य का प्रकृष्ट उपकारक है। प्रकृष्ट उपकारक उसे कहते हैं जिसके बाद बिना बाधा के शीघ्र ही कार्य की उत्पत्ति हो जाये। 'राम ने बाण से बाली का वध किया'। यहाँ बाली की सद्यः मृत्यु का कारण बाण है अतः बाण को ही करण माना गया है क्योंकि बाण में ही अति शयता है। इस अतिशय प्रकर्ष को व्यापार कहा जाता है, अतः व्यापार वाले असाधारण कारण को करण कहते हैं।

कार्यकारण वाद में दार्शनिकों ने प्रमुख रूप से सांख्य और न्याय आदि दर्शनों की मान्यता है, जिस प्रकार के गुण कारण में होते है, उसी प्रकार के गुण कार्य में आते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सर्वं च नाम रूपादि सदानत्मनैव सत्यं विकार जातं तस्त्वृतमेव। छांदोग्य उपनिषद् भाष्य 713/2
2. असद्करणा दुपानग्रहणात् सर्वसम्भवाभारात् शक्य शक्तस्य शक्यकरणात् करण भावात् सत्कार्यम् ।। सांख्याकारिका
3. प्रागभाव प्शायां च हेतु व्यापार दर्शनम् । न तु प्रध्वंसवेलायामतः कमवुयज्जमहे। न्या0मं0–2–65
4. व्यापादवद् असाधारणं कारणम् करणम् तर्कभाषां

*****